खंड: 6, अंक: 6 जून 2023 DELHIN/2021/84711

संश्लेषण

सी जी एस मासिक पत्रिका

जनजातीयता बनाम संजातीयता: पूर्वोत्तर आरक्षण, आंदोलन एवं अतिक्रमण

Aiming High, Touching Sky

सी जी एस
वैश्विक अध्ययन केंद्र
(पूर्वकालिक विकासशील राज्य शोध केंद्र)
दिल्ली विश्वविद्यालय

संपादक

प्रोफेसर सुनील कुमार

निदेशक, वैश्विक अध्ययन शोध केंद्र (पूर्वकालिक विकासशील राज्य शोध केंद्र, डीसीआरसी) एआरसी बिल्डिंग गुरु तेग बहादुर मार्ग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

ई-मेल आई डी: director@cgs.du.ac.in

प्रोफाइल लिंक: https://cgs.du.ac.in/directorMessage.html

संपादक मंडल

डॉ रमेश कुमार भारद्वाज

सहायक आचार्य, सरकारी पी.जी कॉलेज, जीवाजी विश्वविद्यालय, श्योपुर पाली रोड, मध्य प्रदेश, पिन कोड-476337
संयुक्त निदेशक, वैश्विक अध्ययन शोध केंद्र (पूर्वकालिक विकासशील राज्य शोध केंद्र, डीसीआरसी) एआरसी बिल्डिंग गुरु तेग बहादुर मार्ग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

ई-मेल आई डी: rkbhardwaj1@cgs.du.ac.in

प्रोफाइल लिंक: https://www.mphighereducation.nic.in

डॉ महेश कौशिक

सहायक आचार्य, श्री अरबिंदो कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, शिवालिक, मालवीय नगर, नई दिल्ली-110017
अध्येता, वैश्विक अध्ययन शोध केंद्र (पूर्वकालिक विकासशील राज्य शोध केंद्र, डीसीआरसी) एआरसी बिल्डिंग गुरु तेग बहादुर मार्ग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

ई-मेल आई डी: mkaushik@cgs.du.ac.in

प्रोफाइल लिंक: https://www.aurobindo.du.ac.in

डॉ संध्या वर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर, श्यामलाल कॉलेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय, जी. टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-110032
अध्येता, वैश्विक अध्ययन शोध केंद्र (पूर्वकालिक विकासशील राज्य शोध केंद्र, डीसीआरसी) एआरसी बिल्डिंग गुरु तेग बहादुर मार्ग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

ई-मेल आई डी: sverma@shyamlale.du.ac.in

प्रोफाइल लिंक: https://shyamlale.du.ac.in/wp-content/uploads/2021/11/sandhya-Verma-Political-Science.pdf

डॉ अभिषेक नाथ

सहायक आचार्य, एमएलटी कॉलेज, सहरसा; बी एन मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा, बिहार।

ई-मेल आई डी: tuesdaytrack@gmail.com

प्रोफाइल लिंक: https://bpsm.bihar.gov.in/Assets2022/AssetDetails.aspx?P1=2&P2=12&P3=239&P4=3

© सीजीएस2024

संश्लेषण

जनजातीयता बनाम संजातीयताः पूर्वोत्तर आरक्षण आंदोलन एवं अतिक्रमण

अनुक्रमिका

संपादकीय

1. नृजातीय पहचान और प्रतिस्पर्धी अस्तित्व
   — अभिषेक नाथ 1—4
2. "जले'न—गाम" मणिपुर में कुकी मातृभूमि की मांगः कुकी स्वायत्तता से संबंधित प्रमुख मुद्दे और चुनौतियाँ — रमेश चौधरी 5—13
3. जनजातीय अस्मिता व सांस्कृतिक संघर्षः मणिपुर के संदर्भ में
   — सृष्टि 14—17
4. संविधान की छटी अनुसूची व समावेशिताः उत्तर—पूर्वी राज्यों के विशेष संदर्भ में
   — नरेंद्र कुमार 18—21
5. पूर्वोत्तर भारत में जनजातीय समुदाय : आरक्षण, प्रवासन और अतिक्रमण की चुनौतियां
   — अमित प्रताप जटिया 22—28

सम्पादकीय

वैश्विक अध्ययन केंद्र, दिल्ली विश्वविधालय की हिन्दी मासिक पत्रिका संश्लेषण के प्रकाशन की निरंतरता को बनाए रखते हुए इसके इस 59वें अंक को आप सभी सुधी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष हो रहा है। यह पत्रिका अपने उद्देश्य के अनुरूप समसामयिक विषयों पर विधार्थीयों एवं शोधार्थीयों के वैचारिक प्रकटीकरण को निरंतर मंच प्रदान करती रही है। यह हिंदी भाषा में लेखन एवं प्रकाशन मे व्याप्त रिक्तता को समाप्त करने में अपना अमूल्य योगदान बनाए हुए है।

पूर्वोत्तर भारत के जटिल सामाजिक–राजनीतिक परिदृश्य में, जनजातीयता व संजातीयता के मध्य तनाव एक बहुआयामी चुनौती प्रस्तुत करता है। इस क्षेत्र की विविध जनसांख्यिकीय क्षेत्र में विभिन्न जनजातियाँ हैं, जिनमें से प्रत्येक की भिन्न–भिन्न भाषाएँ, रीति–रिवाज व सांस्कृतिक प्रथाएँ हं। इन आदिवासी समुदायों की रक्षा व संवर्धन के उद्देश्य से बनाई गई आरक्षण नीतियों ने प्रायः विवाद व संघर्ष को जन्म दिया है।

आरक्षण नीतियों को प्रारंभ में स्वदेशी जनजातियों के अधिकारों की रक्षा के लिए तैयार किया गया था, जिससे कि शिक्षा, रोजगार व शासन में उनका प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो सके। तथापि, इन नीतियों के कार्यान्वयन से कभी–कभी अनपेक्षित परिणाम सामने आए हैं। उदाहरण के लिए, आरक्षण प्रणाली ने कभी–कभी गैर–आदिवासी समुदायों के मध्य बहिष्कार की भावनाओं को बढ़ाया है, आक्रोश को बढ़ावा दिया है तथा सामाजिक अशांति में योगदान दिया है। अंतर्निहित मुद्दा मात्र संसाधनों के आवंटन के बारे में नहीं है, अपितु बहुलवादी समाज के अंतर्गत निष्पक्षता व समानता की धारणा को भी इंगित करता है।

आदिवासी क्षेत्रों में बाहरी लोगों द्वारा अतिक्रमण परिदृश्य और अधिक विवादास्पद बन जता है। क्योंकि यह विषय मात्र भूमि के बारे में नहीं है, अपितु आदिवासी संस्कृतियों व पारंपरिक जीवन शैली के क्षरण के बारे में भी है। इन क्षेत्रों में गैर–आदिवासी व्यक्तियों के आने से प्रायः संसाधनों व अवसरों के लिए प्रतिस्पर्धा होती है, जिससे विभिन्न समुदायों के मध्य टकराव होता है। चुनौती आदिवासी अधिकारों को बनाए रखने तथा सामंजस्यपूर्ण अंतर–जातीय संबंधों को बढ़ावा देने के मध्य संतुलन बनाने में है। इस जटिल क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए, ऐसी नीतियों को अपनाना महत्वपूर्ण है जो क्षेत्र के ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक संदर्भ के प्रति संवेदनशील हों। आपसी समझ

को बढ़ावा देना तथा यह सुनिश्चित करना कि आरक्षण प्रणाली निष्पक्ष व पारदर्शी दोनों हो, संघर्षों को कम करने में सहायता कर सकता है। जैसे–जैसे उत्तर–पूर्व भारत विकसित होता जा रहा है, आदिवासीवाद व संजातीयता के प्रति एक सूक्ष्म दृष्टिकोण स्थायी शांति और विकास को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक होगा।

प्रस्तुत अंक में प्रकाशित समस्त लेख मौलिक है तथा संपादकीय मंडल ने इनकी मौलिकता को किसी भी रूप में प्रभावित एवं परिवर्तित करने का प्रयास नहीं किया है। आप समस्त पाठकों द्वारा इस अंक के संबंध मे प्राप्त प्रतिक्रियाओं के आधार पर हम संश्लेषण के आगामी अंकों में और अधिक गुणवत्ता लाने का प्रयास निरंतर करते रहेंगे।

संपादक मंडल शुक्रवार, 14 जुलाई 2023

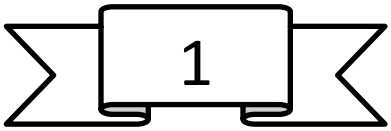

नृजातीय पहचान और प्रतिस्पर्धी अस्तित्व

अभिषेक नाथ

सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, एम. एल.टी. महाविधयालय, सहरसा, बिहार

नृजातीय पहचानों को उपयुक्त मान्यता देते हुए उनकी सामाजिक–सांस्कृतिक अस्तित्व को सुरक्षित रखना भारतीय संघ की एक प्रमुख चुनौती और उपलब्धि रही है। विशेषकर उत्तर–पूर्वी राज्यों में यह मुद्दा बहुत संवेदनशील रहा है जो कई नृजातीय और जनजातीय समुदायों का निवास क्षेत्र है। किन्तु प्रतिस्पर्धी दावे–प्रतिदावे और बाह्य हस्तक्षेप के प्रभाव से यह क्षेत्र हमेशा ही जनजातीय झगड़ों का केंद्र बना रहा है जिसका सफल निस्तारण एक चुनौती बनी हुई है।

एतिहासिक परिप्रेक्ष्य

स्मरणीय है कि ब्रिटिश सरकार ने ज्यादा से ज्यादा भू–क्षेत्रों से कृषि लगान वसूल करने के लिए कई जनजातीय इलाकों में भी हस्तक्षेप किया तथा कुछ जनजातियों को संतुलित करने के लिए अन्य जनजतियो को उनके इलाके में बसने के लिए प्रेरित करने की नीति को भी अपनाया। जिसके परिणामस्वरूप जनजातियों के बीच कृषि गतिविधिओं तथा उनके उत्पाद और साथ ही वासक्षेत्र के लिए संघर्ष शुरू हो गया।

भारत का उत्तर–पूर्वी क्षेत्र विशेषकर पड़ोसी देशों से न केवल नृजातीय पहचान बल्कि एक लम्बी सीमान्त भी साझा करते है जो आसानी से प्राकृतिक रूप से आवागमन के लिए खुले हुए है। परिणामस्वरूप पड़ोसी देशों में किसी तरह की समस्या होने पर वहां से कई समुदाय भारत की ओर रुख कर लेते है। साथ ही ब्रिटिश शासन काल से ही कुछ जनजातियों ने आधुनिक शिक्षा और प्रशासन में भाग लेकर खुद को विकास की मुख्य धारा से जोड़ा जिससे वे अन्य समुदायों से आगे निकल गए।

उपरोक्त कारण इस क्षेत्र में आपसी पहचान और अस्तित्व के संरक्षण के लिए प्रतिस्पर्धा के मूल कारण हैं। ब्रिटिश भारत में 'इनर लाइन परमिट' व्यवस्था के तहत जनजातीय/पहाड़ी इलाकों को अन्य लोगों के हस्तक्षेप से दूर रखा गया और आजाद भारत के संविधान में भी कुछ इसी तरह

की व्यवस्था अनुसूचित क्षेत्रों की पहचान के द्वारा की गई। लेकिन यह भी एक तथ्य है कि एक ही क्षेत्र में कई अलग–अलग जनजातियाँ निवास करती हैं और उनके बीच पूर्वोक्त वर्णित कारणों से आपसी संघर्ष देखा जाता रहा है। नागा और कूकी के बीच पूर्व में सघर्ष इसका एक उदाहरण है। जिसका फायदा कई बार बाह्य देश भी उठाते हैं और हथियारों से सहायता कर उग्रवाद को भी बढ़ावा देते हैं। चीन में एक दलीय सरकार और म्यामांर में सैनिक तानाशाही के कारण यह समस्या और बढती है। साथ ही इन जनजातियो की विभिन्न धार्मिक पहचान का इस्तेमाल भी पड़ोसी देश अपने क्षुद्र हितों की पूर्ति और भारत में आतंरिक अशांति फैलाने के लिए करते है।

मणिपुर में नृजातीय संघर्ष

मणिपुर में वर्तमान में फैली हिंसा को इसी सन्दर्भ में देखा जा सकता है, जहाँ मैतेई समुदाय (ज्यादतर हिन्दू धर्मावलम्बी) विकास के पथ पर आगे निकल गया है किन्तु कूकी जनजातीय समुदाय (ज्यादतर क्रिस्चियन और मुस्लिम) विकास के पथ में पीछे रह गए हैं। इनकी प्रतिस्पर्धा पहले नागालैंड में निवास करने वाले नागा जनजातीय लोगों से भी रही है। हाल के समय में मैतेई समुदाय जो अभी अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) में है खुद के लिए अनुसूचित जनजाति (एसटी) की पहचान दिए जाने के लिए मांग कर रही है जिसका विरोध राज्य के पहाड़ी इलाकों में रह रहे कूकी समुदाय कर रही है जिसे नागा जनजातियो का भी मौन समर्थन प्राप्त होता प्रतीत हो रहा है जबकि पूर्व में नागा और कूकी समुदाय के बीच भी वासक्षेत्र को लेकर हिंसक संघर्ष होते रहे हैं। मैतेई लोगों को इससे पहाड़ी इलाकों में भी भूमि क्रय करने और बसने की छुट मिलेगी। मणिपुर की जनसँख्या का 60 प्रतिशत मैतेई समुदाय केवल 10 प्रतिशत घाटी के इलाकों में रह रहे हैं। बढती जनसँख्या और विकास को देखते हुए मैतेई अपने लिए अधिक वासक्षेत्र की खोज में हैं। जबकि करीब 24 प्रतिशत नागा और 16 प्रतिशत कूकी–मिजो जनजाति शेष पहाड़ी इलाकों में वास करती है। कूकी मुख्य रूप से परंपरागत स्थान्तरित कृषि करते है और छोटे छोटे समूहों में अपनी जनजातीय रिवाजों के तहत रहते हैं।

जहाँ मैतेई और नागा इस क्षेत्र के मूल निवासी माने जाते है वही कूकी जो भारत के उत्तर–पूर्वी, म्यामांर और बांग्लादेश के पहाड़ी इलाकों की सबसे बड़ी जनजाति है जिसे मणिपुर–नागालैंड के क्षेत्रों में बसने के लिए अंग्रेजों ने प्रोत्सहित किया था। जो मूल रूप से म्यामांर से सम्बन्ध रखती है किन्तु यह मिजो भाषा परिवार से संबंध होने के कारण मिजो–चीन–कूकी को एकसाथ 'जो' जनजाति भी कहा जाता है।

म्यामांर की सैनिक शासन में कूकी जनजातियो पर धार्मिक आधार पर (क्रिस्चियन होने के कारण) पर हिंसा होती रही है जिसके कारण ये लोग बड़े पैमाने पर अवैध प्रवासी के रूप में मणिपुर के स्थानीय कूकी लोगों से समानता के कारण आसानी से मिल जाते है। जो हथियारबंद होकर म्यामांर के विरुद्ध भी हिसंक गतिविधि में शामिल रहते हैद्य इन्हें अफीम की खेती और व्यापार से भी जोड़ा जाता है। यद्यपि कूकी जनजाति के नेता इन दोनों ही आरोपों को सही नहीं मानते है।

नृजातीय संघर्ष और आधुनिक राज्य की बाध्यताएं

कुछ तो राजनीतिक लामबंदी और कुछ बाहरी हितों के हस्तक्षेप के कारण भी वर्तमान में दोनों समुदायों के बीच एक हिंसक संघर्ष जारी है। जिसमे राज्य भी बहुत निष्पक्षता से कार्य करता नहीं दिख रहा है।

मणिपुर में हिंसक संघर्ष के मध्य ज्यादतर नेता अपने अपने समुदाय के पक्ष में खड़े है और दूसरों को लेकर संदेहास्पद है। मणिपुर के मुख्यमंत्री पर भी मैतेई समुदाय से होने के कारण उनका पक्ष लेने की बात कही जा रही है। दूसरी तरफ केंद्र सरकार की तरफ से त्वरित और पर्याप्त प्रयास नहीं किये जाने को संदेहास्पद रुप से देखा जा रहा है। इस संघर्ष के तात्कालिक कारण भले ही मैतेई समुदाय की अनुसूचित जनजाति घोषित करने की मांग हो लेकिन उत्तर–पूर्वी राज्यों के विशेषज्ञों का मानना है कि यह वास्तव में पहाड़ी इलाकों में राज्य के बढ़ते हस्तक्षेप जिससे पारंपरिक कृषि पर पाबन्दी और वास क्षेत्रों की कमी एक मुख्या कारण है जिससे कि कूकी जनजाति प्रभावित हो रही है। दूसरी तरफ मणिपुर न केवल वृहत नागालैंड की मांग में मणिपुर के इलाकों के लिए दावे से बल्कि पहाड़ी इलाकों में भी अवैध प्रवासी कूकी जनजातिओं की बढती संख्या से चिंतित है।

अभी हाल के दशक में उत्तर–पूर्वी राज्यों में जनजातीय इलाकों के लिए संघर्ष में कमी देखी गयी थी जिसमे की 1980 के दशक में ही मिजो समझौता और हल के वर्षों में एनएससीएन (आई.एम.) के साथ केंद्र सरकार की सफल वार्ता का योगदान रहा है। साथ ही पिछले कुछ वर्षों में विवादस्पद आफ्स्पा कानून (आर्म्ड फोर्सेस स्पेशल पॉवर एक्ट 1958) को भी उत्तर पूर्वी राज्यों के बड़े हिस्से से हटा लिया गया है जिसकी हमेशा से मांग होती रही है क्योंकि यह सेना को असीमित अधिकार प्रदान करता है।

किन्तु म्यामांर से निष्कासित कूकी समुदाय के भारत की कूकी समुदाय के साथ बढ़ते सहयोग ने राज्य को उनके प्रति एक संदेहास्पद नजरिये से देखने को प्रेरित किया है। यही कारण है की

मणिपुर में भी अब राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर (एनआरसी) की मांग की जा रही है। यह बात काफी महत्वपूर्ण है की जहाँ शेष भारत में एनआरसी का विरोध होता रहा है वही उत्तर–पूर्वी राज्यों में इसकी हमेशा ही मांग होती रही है। जिससे राज्य को भी अपने ही नागरिकों पर संदेह करने का अवसर भी प्राप्त होता है। यद्यपि किसी भी प्रकार की अवैध गतिविधियों को रोकने के लिए राज्य का अधिकार हमेशा ही सुरक्षित है।

यह भी ध्यान रखना महतवपूर्ण है कि सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए भारतीय राज्य द्वारा अनुसूचित जाति, जनजाति और ओबीसी के रूप में जनसंख्या की पहचान सदैव ही सैद्धांतिक और नीतिगत रूप से भी विरोधाभाषों से घिरी रही है। जिसके कारण सामाजिक न्याय द्वारा संरक्षित एक विशिष्ट वर्ग का जन्म हुआ है जो इस सुविधा पर अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानकर इसके किसी भी तरह के तार्किक समीक्षा का पुरजोर विरोध करते है जिसमें विभिन्न राजनितिक दलों के अपने हित भी सिद्द होते है। हालाँकि यह एक पूर्णतः अलग चर्चा का मुद्दा है।

हमें यह भी समझना होगा कि प्रकृतिक रूप से यह पूरा क्षेत्र जिसमें म्यामांर का पश्चिमी और बांग्लादेश का पहाड़ी इलाका भी शामिल है। शुरू से ही जनजातीय गतिविधिओं का क्षेत्र रहा है किन्तु उत्तर–औपनिवेशिक राज्यों की अधिक से अधिक समरूपता हासिल करने की चाह और इस प्रक्रिया में सीमाओं पर रहने वाले लोगों को अक्सर संदेह की निगाह से देखने की प्रवृति ने राज्यों को एक तर्कसंगत व्यवहार करने से रोका है। अतः आवश्यकता है कि आधुनिक राज्य की कठोर सीमाओं की संकल्पना से आगे बढ़कर सोचा जाये और साथ ही यह भी सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि जातीय पहचान और संसाधनों पर अधिकार को किस प्रकार संतुलित किया जाए। आवश्यकता है कि केंद्र और राज्य सरकार तथा प्रतिस्पर्धी समुदायों के नेतृत्वकर्ता मिलकर दोनों समुदायों के हितों की रक्षा करें और बाहरी हस्तक्षेप को भी समाप्त करें। नहीं तो यह समस्या उत्तर–पूर्व के अन्य संवेदनशील इलाकों में भी फैल सकती है जिसका लाभ चीन, बांग्लादेश और म्यामांर जैसे पड़ोसी देश उठा सकते हैं।

♦♦♦♦♦

2

"जले'न–गाम" मणिपुर में कुकी मातृभूमि की मांगः कुकी स्वायत्तता से संबंधित प्रमुख मुद्दे और चुनौतियाँ

रमेश चौधरी

शोधार्थी, अफ्रीकी अध्ययन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

मणिपुर में कुकी–जोमी जनजातियों और मैतेई समुदाय के बीच हाल ही में हुए जातीय संघर्ष व हिंसा के मध्य राज्य के दस कुकी विधायकों ने 'भारतीय संविधान के तहत पृथक प्रशासन' की मांग की है। उनके अनुसार कुकी समुदाय अब मणिपुर के अंतर्गत अस्तित्व में नहीं रह सकता है, उन्होंने कहा कि कुकी जनजातीय समुदायों के लिए मैतेइयों के साथ रहना मृत्यु के समान है। भारतीय संविधान के तहत एक पृथक कुकी प्रशासन के आह्वान ने कुकी मातृभूमि के लिए स्वायत्तता की मांग पर एक बहस को जन्म दिया है, जिसकी पृष्ठभूमि भारत की स्वतंत्रता के बाद से मणिपुर के राजनीतिक इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा रहा है। कुकी मातृभूमि या कुकीलैंड का विचार जले'न–गाम की अवधारणा पर आधारित है। जले'न–गाम थडौ–कुकी बोली का एक शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ 'स्वतंत्रता की भूमि' ह, जले'न–गाम कुकी जनजाति समुदाय द्वारा एक प्रस्तावित राजनीतिक इकाई या राज्य की कल्पना है जिसका उद्देश्य सभी कुकी जनजातियों को एक ही प्रशासनिक प्राधिकरण के तहत एकजुट करना है।

जले'न–गाम – मणिपुर में कुकी मातृभूमि 'कुकीलैंड' की मांग

जले'न–गाम से अभिप्राय कुकी जनजाति समुदायों के लिए भूमि पर राजनीतिक और प्रशासनिक स्वायत्तता की मांग से है, मणिपुर के कुकी समूहों द्वारा मणिपुर से एक स्वतंत्र राज्य बनाने की मांग की गई है। जिसमें मुख्य रूप से चुराचांदपुर, सेनापति, चंदेल और सदर पहाड़ी जिले शामिल है। कुकी बोली में जले'न–गाम का अर्थ "स्वतंत्रता की भूमि" है, जिसे जलेनगाम के नाम से भी जाना जाता है। यह नाम या विचार कुकी राष्ट्रवादियों द्वारा प्रस्तावित राजनीतिक क्षेत्रीय इकाई के संदर्भ में चुना गया था जो भविष्य में सभी कुकी जनजातियों को एक ही स्वायत्त प्रशासनिक प्राधिकरण के तहत एकजुट करेगा।

जले'न–गाम कुकी नेशनल ऑर्गेनाइजेशन (KNO) के अध्यक्ष पी.एस हाओकिप द्वारा प्रतिपादित एक वैचारिक अवधारणा है, उनके अनुसार इसका अर्थ है 'अपनी भूमि में लोगों की स्वतंत्रता'। हाओकिप ने ब्रिटिश शासन से पहले कुकी जनजातियों की पूर्व पैतृक पहचान को एकजुट करने और कुकी मातृभूमि को बहाल करने के उद्देश्य स जले'न–गाम की विचारधारा का प्रचार प्रसार किया। इसमें कुकी इतिहास, राष्ट्रवाद और पूर्व–औपनिवेशिक काल में तत्कालीन कुकी क्षेत्र की बहाली के सार को समझाया गया।

- कुकी पहचान और मणिपुर में कुकी राष्ट्रवाद का विकास

कुकी, एक सामान्य शब्द है जो विभिन्न उप–जनजातियों पर लागू होता है जैसे कि थाडौ, पाइते, हमार, सिमटे, गैंग्टे, वैफेई, गुइटे, राल्टे आदि। कुकी शब्द एक जातीय इकाई को संदर्भित करने वाला सामान्य शब्द है, जो उत्तर–पश्चिम म्यांमार (बर्मा), बांग्लादेश के चटगांव पहाड़ी इलाकों और पूर्वोत्तर भारत में फैले क्षेत्र में निवास करते है। उत्तर पूर्व भारत में, वे मुख्य रूप से मणिपुर, मिजोरम, असम, नागालैंड, त्रिपुरा और मेघालय राज्यों में हैं। मणिपुर में कुकी शब्द के प्रयोग से पहले उन्हें खोंगजाई के नाम से जाना जाता था। हालाँकि, यह अभी भी निश्चित रूप से ज्ञात नही है कि 'कुकी' शब्द की उत्पत्ति कहाँ से हुई है। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में दी गई परिभाषा के अनुसार, कुकी नामतलेइक नदी के दक्षिण में म्यांमार (बर्मा) से असम और बांग्लादेश को विभाजित करने वाली पहाड़ियों के दोनों किनारों पर रहने वाले जनजातियों के एक समूह को दिया गया नाम है।

कुकियों के बारे में पहली बार 1777 में वॉरेन हेस्टिंग्स के गवर्नर जनरल के कार्यकाल के दौरान सुना गया था,जब ये जनजातियाँ चटगाँव में अंग्रेजों पर बार–बार आक्रमण किया करती थीं। 1845 में, उनके बड़े पैमाने पर प्रवासन और विस्थापन ने पहाड़ी लोगों के पुराने कुकी निवासियों को चिंतित कर दिया। इस समस्या का समाधान हेतु मणिपुर के एक ब्रिटिश अधिकारी मैककोलोच ने उन्हें इस तरह से बसाया कि वे अनावृत सीमाओं पर रक्षक के रूप में कार्य करें।

कुकी राष्ट्रवाद का विकास भी नागाओं की तरह आरंभ हुआ, इसकी शुरुआत ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ कुकी समुदाय की लामबंदी से हुई। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान कुकी समुदाय के लोगों ने उन अंग्रेजों का विरोध किया जो उन्हें जबरदस्ती यूरोप में मजदूर के रूप में भेजना चाहते थे। यह घटना जिसे कुकी विद्रोह के नाम से जाना जाता है, इसे कुकी समुदाय का उपनिवेशवाद–विरोधी स्वतंत्रता संग्राम माना जाता है। क्षेत्र में नागाओं और अन्य जनजातीय समूहों को अपनी जातीय

मातृभूमि मिलने के साथ, कुकी समुदाय की युवा पीढ़ी भी अलग स्वायत्त राजनीतिक इकाई और कुकी मातृभूमि के लिए बेचौन और उग्र हो गए थे। 1980 के बाद से मणिपुर की पहाड़ियों में नेशनल सोशलिस्ट काउंसिल ऑफ नागालिज्म (NSCN) के मजबूत होने से कुकी लोगों की हताशा कई गुना बढ़ गई है और पृथक कुकी मातृभूमि की मांग जोर पकड़ने लगी।

- पृथक कुकी मातृभूमि 'कुकीलैंड' की मांग

कुकी लोग लंबे समय से अपने जनजातीय समुदाय के लिए राजनीतिक व प्रशासनिक आत्मनिर्णय और स्वायत्तता की मांग कर रहे हैं। सबसे पहला मामला या घटना 1960 में जहां कुकी समुदाय ने अपने लिए एक अलग राज्य की मांग की थीय 1957 में राज्य में ग्राम प्रधानों के चुनाव के लिए हुए चुनाव के बाद कुकी लोगों ने अपनी अस्मिता के संरक्षण के लिए कुकी मातृभूमि की मांग की। कुकी समुदाय ने तर्क दिया कि ग्राम प्राधिकरण अधिनियम, 1956 के तहत ग्राम प्रधान को चुनने की प्रणाली को भूमि पर कुकी लोगों के अधिकारों को खत्म करने का एक साधन के रूप में प्रयोग किया गया है।

कुकियों में मैतेई लोगों के प्रति नाराजगी रही है क्योंकि उन्हें लगता है कि मैतेई बहुमत और प्रभुत्व वाली राज्य सरकार ने उनके क्षेत्रों को पिछड़ा रखा और उन्हें पर्याप्त राजनीतिक प्रतिनिधित्व नहीं दिया। उनके अनुसार मैतेई समुदाय मणिपुर की पूरी राजनीतिक अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करता है। 1980 के दशक में नेशनल सोशलिस्ट काउंसिल ऑफ नागालिम की कुकी आबादी वाले क्षेत्र को ग्रेटर नागालिम में शामिल करने की मांग से नागा और कुकी समुदायों के मध्य विरोध का भाव पैदा हुआ। हालाँकि, 1990 के दशक में नागाओं के साथ हिंसक झड़पों और गतिरोध के बाद एक अलग कुकी राज्य की मांग राजनीतिक चर्चाओं में प्रमुख रही। 1992 से 1997 के मध्य नागा उग्रवादी समूहों द्वारा कुकी लोगों का जातीय संहार किया गया, जिसके बाद राज्य में पृथक या स्वतंत्र कुकीलैंड की मांग करने वाले कई कुकी सशस्त्र और उग्रवादी समूह सामने आए।

हालाँकि, मैतेईयों के प्रभुत्व वाली राज्य सरकार कुकीलैंड प्रादेशिक परिषद के निर्माण के विरूद्ध है क्योंकि वे इसे अलग कुकी मातृभूमि की मांग को मान्यता देने की दिशा में पहला कदम मानते हैं। मुख्यमंत्री की अपनी पार्टी के सात विधायकों सहित कुल दस कुकी विधायकों ने मई 2023 में कुकी समुदाय के लिए पृथक प्रशासन की मांग की थी। परंतु राज्य के मुख्यमंत्री एन. बीरेन सिंह

ने इस प्रस्ताव को स्पष्ट रूप से खारिज कर दिया और इसके विपक्ष में कहा कि मणिपुर की क्षेत्रीय अखंडता की हर कीमत पर रक्षा की जाएगी।

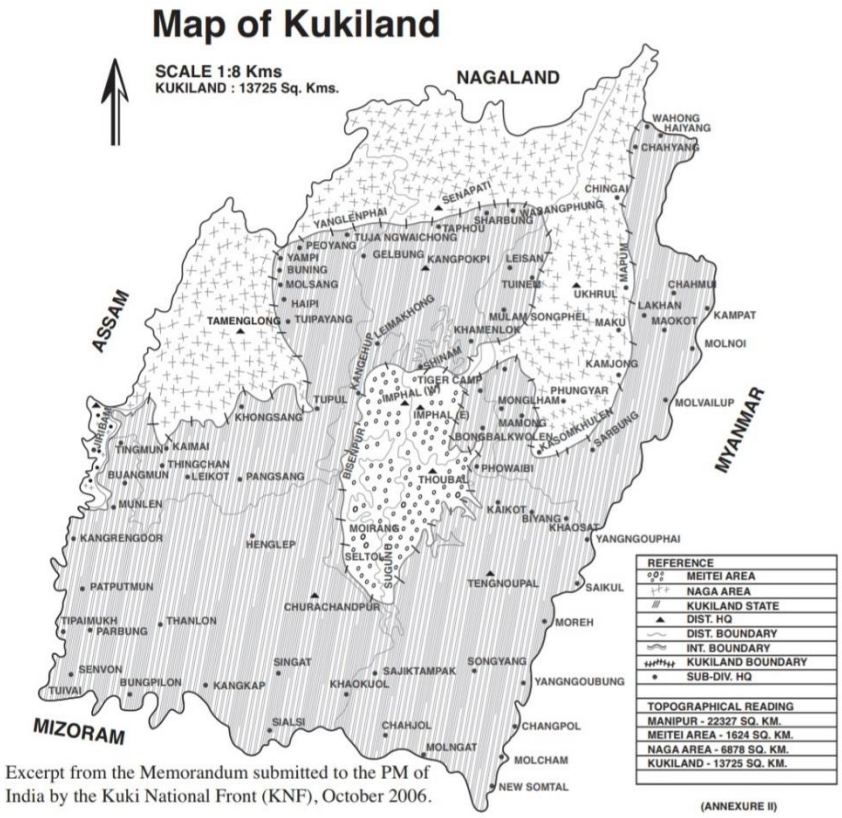

कुकी नेशनल फ्रंट द्वारा प्रस्तावित कुकीलैंड का मानचित्र

स्रोतः 2006 कुकी नेशनल फ्रंट (KNF) द्वारा भारत के प्रधान मंत्री को सौंपे गए ज्ञापन पर आधारित मानचित्र

कुकी स्वायत्तता की मांग से संबंधित मुद्दे और चुनौतियाँ

हालाँकि मणिपुर के पहाड़ी क्षेत्रों में कुकीलैंड की मांग के अतिरिक्त स्वायत्तता की विभिन्न प्रकार की माँगें राजनीतिक और समसामयिक पटल पर सामने आई हैं, लेकिन इन माँगों के साथ कई मुद्दे और चुनौतियाँ भी जुड़ी हैं। प्रतिस्पर्धात्मक पहचान के साथ 'जातीय मातृभूमि' की प्रतिस्पर्धा का मुद्दाय विभिन्न पहाड़ी जनजातियों के मध्य भूमि और क्षेत्रीय दावेय स्वतंत्र या मुक्त मणिपुर का प्रश्न जिसकी वकालत घाटी–आधारित विभिन्न उग्रवादी समूहों द्वारा की जाती हैय और भारत

सरकार व मणिपुर राज्य सरकार की नीतियां एवं प्रतिक्रियाएँ मणिपुर के पहाड़ी क्षेत्रों में कुकी स्वायत्तता की माँग के प्रति कुछ प्रमुख मुद्दे और चुनौतियाँ हैं।

- प्रतिस्पर्धात्मक 'जातीय मातृभूमि' का मुद्दा

मणिपुर के पहाड़ी क्षेत्रों में कुकी स्वायत्तता के लिए प्रमुख चुनौतियों में से एक नागा और कुकी समूह के मध्य पहचान, भूमि और क्षेत्रीय दावों का विवाद है। दोनों जातीय समुदाय मणिपुर के पहाड़ी इलाकों में एक साथ रहते थे। हालाँकि, नागाओं का दावा है कि मणिप्र के पहाड़ी इलाके उनकी 'पैतृक मातृभूमि' हैं और वे कुकियों को विदेशी मानते हैं और इन्हें 19वीं सदी के दौरान मणिपुर में अंग्रेजों के औपनिवेशिक प्रतिरोपण के रूप में स्पष्ट करते है। नेशनल सोशलिस्ट काउंसिल ऑफ नागालिस्म–इसाक मुइवा (NSCN – IM) ने यह भी समान दावा किया है, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में कुकी मातृभूमि जैसा कोई विचार नहीं था। यह 1840 के दशक की बात है जब ब्रिटिश अधिकारी मैककोलोच ने ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ नागा प्रतिरोध को कम करने के लिए नागा पहाड़ियों में बड़ी संख्या में कुकियों को लाकर नागा पहाड़ी क्षेत्रों की जनसांख्यिकी चरित्र को परिवर्तित करने की एक व्यवस्थित नीति शुरू की थी। थोड़े ही समय में नागा पहाड़ियों में हजारों कुकी लोगों को विस्थापित किया गया। कुकी मातृभूमि स्थापित करने की मांग एक हालिया घटना है और यह मांग वास्तविक नागा क्षेत्र के भीतर ही है। मणिपुर के पहाड़ी क्षेत्रों के भूमि स्वामित्व के ऐसे दावों के आधार पर, नागा वर्तमान में चुराचांदपुर को छोड़कर मणिपुर के सभी पहाड़ी जिलों को अपने प्रस्तावित 'ग्रेटर नागालिम' के तहत एकीकरण की मांग कर रहे है। दोनों समुदायों के मध्य पहचान, भूमि और क्षेत्रीय दावों के ऐसे प्रतिस्पर्धी दावों के कारण, एनएससीएन (आईएम) ने मणिपुर के पहाड़ी इलाकों में कुकियों के खिलाफ एक हिंसक जातीय अभियान शुरू किया, जो अंततः 1990 के दशक में नागा–कुकी हिंसक संघर्ष में परिवर्तित हो गया। अगस्त 2015 में एनएससीएन (आईएम) और भारत सरकार के मध्य 'भारत–नागा शांति समझौते' पर हस्ताक्षर किए गए। लेकिन, कुकी इनपी मणिपुर (KIP) जो कि मणिपुर में कुकी समुदाय का शीर्ष सामाजिक संगठन है, कुकी इनपी मणिपुर ने इस बात पर भी जोर दिया गया कि कुकी दो पक्षों के मध्य किसी भी शांति समझौते को तब तक स्वीकार नहीं करेंगे जब तक कि कुकी समुदाय के खिलाफ एनएससीएन (आईएम) जातीय हिंसा अभियान का मुद्दा हल नहीं हो जाता।

- जनजातीय समूहों के भीतर 'एकता' और 'सर्वसम्मति' का प्रश्न

हालाँकि कुकी समुदाय पृथक कुकी राज्य 'जेल'न–गाम' और नागा लोग 'ग्रेटर नागालिम' के रूप में अपनी 'जातीय मातृभूमि' की मांग कर रहे है, कुकी और नागा समुदायों के भीतर अंतर–जनजातीय प्रतिद्वंद्विता और गुटबाजी का मुद्दा उनकी संबंधित मांगों में किसी भी प्रकार की एकता और सर्वसम्मति संभव नहीं हो पाई है। इस अंतर–जनजातीय प्रतिद्वंद्विता और गुटबाजी के परिणामस्वरूप समुदायों के मध्य अनेक सशस्त्र हिंसक घटनाएँ एवं प्रतिरोध हुए है। कुको समुदाय के भीतर, अंतर–जनजातीय और कबिलाई प्रतिद्वंद्विता अलग 'कुकी–राज्य' की उनकी मांग में एकता और सर्वसम्मति की भावना को दूर करती है। हालाँकि ज्ञछ। का गठन शुरू में कुकी राज्य के एक अखिल–राजनीतिक संगठन के रूप में किया गया था, पहचान और नामकरण के मुद्दों पर मतभेद के कारण यह कुकी जनजातियों के एक साझा राजनीतिक मंच के रूप में उभर नहीं सका। इसके अलावा, विभिन्न कुकी सशस्त्र समूहों के मध्य प्रतिस्पर्धा और संघर्ष व उनके मध्य एक आम राजनीतिक एजेंडे की अनुपस्थिति कुकी मातृभूमि के किसी भी सार्थक समाधान खोजने की राह में बड़ी बाधाएं हैं।

- मणिपुर की 'क्षेत्रीय अखंडता' का मुद्दा

मणिपुर के पहाड़ी क्षेत्रों में कुकी मातृभूमि की स्वायत्तता के लिए एक और बड़ी चुनौती मणिपुर की क्षेत्रीय अखंडता का मुद्दा है। यद्यपि मणिपुर की क्षेत्रीय अखंडता को समय–समय पर स्वतंत्र कुकी मातृभूमि और ग्रेटर नागालिम की मांगों के रूप में चुनौती दी गई है। इसके अलावा, मणिपुर की क्षेत्रीय अखंडता पर ऐसी आशंकाओं के कारण प्रमुख घाटी आधारित मैतेई समुदाय मणिपुर के पहाड़ी क्षेत्रों में भारतीय संविधान की छठी अनुसूची के विस्तार की मांग का निरंतर विरोध करते है, इसे वे अलग कुकी मातृभूमि या ग्रेटर नागालिम के गठन के विस्तार के रूप में प्रस्तुत करते है।

- 'मुक्त मणिपुर' का मुद्दा

मणिपुर के पहाड़ी इलाकों में कुकी मातृभूमि की स्वायत्तता की मांग के लिए एक और बड़ी चुनौती घाटी आधारित उग्रवादी समूहों द्वारा उठाया गया स्वतंत्र या मुक्त मणिपुर का मुद्दा है। 1960 के दशक से, घाटी स्थित सशस्त्र क्रांतिकारी और उग्रवादी समूह जैसे यूनाइटेड नेशनल लिबरेशन फ्रंट (UNLF), पीपुल्स लिबरेशन आर्मी (PLF), रेवोल्यूशनरी पीपुल्स फ्रंट (RPF) आदि का गठन मणिपुर की स्वतंत्रता की स्थिति को बहाल करने के उद्देश्य से किया गया था। हालाँकि ये क्रांतिकारी समूह विभिन्न दृष्टिकोणों से मणिपुर के राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन को आगे बढ़ाते हैं,

लेकिन वे ज्यादातर 'मैतेई जातीय पहचान' पर आधारित हैं। घाटी आधारित उग्रवादी समूहों के ये आंदोलन मणिपुर की क्षेत्रीय अखंडता की रक्षा पर भी जोर देते हैं। मैतेई उग्रवादी समूहों द्वारा समर्थित मुक्त मणिपुर का यह प्रक्षेपण अलग कुकी मातृभूमि या नागालिम की मांगों का खंडन करता है।

- भारत सरकार और मणिपुर राज्य सरकार की नीतियां और प्रतिक्रियाएँ

भारतीय संविधान ने पूर्वोत्तर भारत के आदिवासियों की जातीय पहचान की रक्षा के लिए संविधान की छठी अनुसूची के प्रावधानों और पूर्वोत्तर भारतीय क्षेत्र में अनेक राज्यों का निर्माण के माध्यम से स्वायत्तता प्रदान की है। छठी अनुसूची के प्रावधानों के तहत पूर्वोत्तर भारत में समय–समय पर विभिन्न स्वायत्त परिषदें बनाई गई हैं। नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, मेघालय, मणिपुर और मिजोरम जैसे कई राज्यों का गठन किया गया है और उन्हें भारत संघ में कुछ विशेष दर्जा और शक्तियां प्रदान की हैं। हालाँकि, 1986 में मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश को पूर्ण राज्य का दर्जा मिलने के बाद, केवल परिषदें बनाई गईं और विभिन्न जातीय समूहों की स्वायत्तता माँग के लिए छठी अनुसूची के अंतर्गत क्षेत्रीय परिषद की स्थापना की गई। संक्षेप में, हाल के वर्षों में विभिन्न जातीय समुदायों की मांग के अनुरूप स्वायत्त परिषदों का निर्माण किया गया। इस प्रकार, पूर्वोत्तर भारत में मौजूदा राज्यों के क्षेत्रीय पुनर्गठन द्वारा जातीय आधार पर नए राज्यों का निर्माण भारत सरकार के लिए असंभव और अपरंपरागत प्रतीत होता है। मणिपुर की क्षेत्रीय अखंडता के प्रति केंद्र सरकार की प्रतिबद्धता कुकी उग्रवादी समूह के साथ ैवदे पर त्रिपक्षीय समझौते' में मणिपुर की 'क्षेत्रीय अखंडता से समझौता न करने' के बिंदु को शामिल करने से भी स्पष्ट होती है।

मणिपुर राज्य सरकार की विभिन्न आदिवासी विरोधी नीतियों, अधिनियमों व विधानों और मणिपुर की क्षेत्रीय अखंडता के प्रति इसकी प्रतिबद्धता ने अलग कुकी राज्य और मणिपुर के पहाड़ी इलाकों में संविधान की छठी अनुसूची का विस्तार की मांग के लिए गंभीर चुनौती पेश की है। कई कुकी स्वायत्तता समर्थित समूह मणिपुर की राज्य सरकार को अल्पसंख्यक पहाड़ी जनजातियों पर प्रभुत्वशाली घाटी आधारित मैतेई समुदाय के संरचनात्मक प्रभुत्व का एक साधन के रूप में आरोपित करते है। उनके अनुसार, राज्य में राजनीति, विकास, शिक्षा और रोजगार आदि पर प्रमुख मैतेई समुदाय का एकाधिकार है। मणिपुर राज्य सरकार की नीतियों और प्रतिक्रिया कुकी मातृभूमि की स्वायत्तता की मांग के प्रति कड़ी चुनौती है।

उपरोक्त विश्लेषण से यह पता चलता है कि मणिपुर में कुकी समुदाय की जेल'न–गाम की मांग मेंकई गंभीर मुद्दे और चुनौतियाँ हैं। कुकी मातृभूमि की स्वायत्तता की मांग में अन्य जातीय समूहों मुख्य रूप से नागाओं की पहचान, भूमि और क्षेत्रीय दावों का प्रतिस्पर्धात्मक विरोध शामिल है। जेलश्न–गाम और ग्रेटर नगालिम की मांग में एक अतिव्यापी पहचान, भूमि और क्षेत्रीय दावे हैं। कुकियों के बीच अंतर–जनजातीय और कबिलाई प्रतिद्वंद्विता भी स्वायत्तता की मांग की दिशा में एक बड़ी चुनौती है। घाटी आधारित प्रमुख मैतेई समुदाय और संगठनों द्वारा परिकल्पित क्षेत्रीय अखंडता और मुक्त मणिपुर का प्रश्न कुकी समुदाय की स्वायत्तता की मांग में प्रमुख बाधाएं हैं। अंत में, भारत सरकार और मणिपुर राज्य सरकार की स्वायत्तता की मांग को अस्थिर करने वाली ताकत के रूप में देखने की प्रवृत्ति और राज्य की क्षेत्रीय अखंडता के प्रति उनकी प्रतिबद्धता जेल'न–गाम की मांग के किसी भी सार्थक समाधान में एक और चुनौतीपूर्ण बाधा है।

संदर्भ सूचीः

Roy, Esha (2023). *The demand for a kuki homeland, its history and rationale.* The India Express

Arora, V & Kipgen, N (2017). *Demand for kukiland and kuki ethnic nationalism.* In Arora, V & Jayaram, N (eds) Democratisation in the Himalayas: Interests, Conflict and Negotiation. Oxon, Routledge

Haokip, P.S. (1998). *Zale'n-gam: The kuki Nation.* Manmasi: KNO Publication

Das, P (2023). *The Unfolding Kuki-Meitei Conflict in Manipur.* MP-IDSA

PTI (2023). *Manipur CM rejects demand for separate administration for Kuki Areas.* The Indian Express

Rajagopalan, S (2008). *Peace Accords in Northeast India: A journey over Milestones.* Policy Studies

Hoakip, T.T (2011). *Kuki Armed opposition movement*, Eastern Quarterly

Sharma, S.K (2016). *Ethnic Conflict and Harmonization: A Study of Manipur.* Vivekananda International Foundation

♦♦♦♦♦

3

जनजातीय अस्मिता व सांस्कृतिक संघर्षः मणिपुर के संदर्भ में

सृष्टि

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

मणिपुर, पूर्वोत्तर भारत का एक प्रमुख राज्य, जनजातीय विविधता व सांस्कृतिक समृद्धि के लिए जाना जाता है। यह राज्य विभिन्न जनजातियों का घर है, जिनमें से प्रमुख हैंः मैतेई, कुकी, नागा, और अन्य। इन जनजातियों की अनूठी सांस्कृतिक अस्मिताएं, परंपराएं व सामाजिक संरचनाएं हैं, जो मणिपुर की सांस्कृतिक विविधता को समृद्ध बनाती हैं। तथापि, यह सांस्कृतिक विविधता संघर्ष व टकराव का भी कारण बनती है, जो जनजातीय अस्मिता को प्रभावित कर रही है। इस लेख के अंतर्गत मणिपुर में जनजातीय अस्मिता व सांस्कृतिक संघर्ष के विभिन्न पहलुओं का परीक्षण करने का प्रयास किया जाएगा।

मुख्य रूप से मणिपुर की उपजाऊ घाटी में रहने वाले मैतेई बहुसंख्यक जातीय समूह बनाते हैं और ऐतिहासिक रूप से अधिक राजनीतिक व आर्थिक शक्ति रखते हैं (सिंह, 2020)। राज्य के प्रशासनिक तथा आर्थिक संरचना में उनका प्रभुत्व स्पष्ट है, जो प्रायः घाटी–आधारित हितों का पक्ष लेते हैं। सत्ता के इस संकेन्द्रण ने मणिपुर के अधिक दूरस्थ व संसाधन–समृद्ध पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाली कुकी व नागा जैसी पहाड़ी जनजातियों के मध्य आक्रोश को बढ़ावा दिया है (सरमा, 2021)। कुकी व नागा, जिनमें से प्रत्येक की भिन्न–भिन्न सांस्कृतिक प्रथाएँ व राजनीतिक आकांक्षाएँ हैं, लंबे समय से अधिक स्वायत्तता व मान्यता की माँग कर रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप घाटी में रहने वाले मीतेई लोगों के साथ टकराव हुआ है। भूमि व संसाधन विवाद इन समूहों के मध्य संघर्ष का एक प्रमुख स्रोत हैं। घाटी और पहाड़ी समुदायों के मध्य विभाजन ने भूमि उपयोग, वन संसाधनों व क्षेत्रीय दावों पर प्रतिस्पर्धा को जन्म दिया है। उदाहरण के लिए, घाटी के विकास के पक्ष में नीतियों की शुरूआत प्रायरू पहाड़ी जनजातियों द्वारा पारंपरिक रूप से उपयोग की जाने वाली भूमि पर अतिक्रमण करती है (भट्टाचार्य, 2019)। नागा समुदाय की भिन्न प्रशासनिक व्यवस्था की माँग, कुकी की स्वायत्तता की माँग के साथ मिलकर इन विवादों को और बढ़ाती है और प्राकृ

तिक संसाधनों के प्रबंधन को जटिल बनाती है (कुमार, 2022)। ये भूमि संघर्ष केवल आर्थिक ही नहीं हैं, अपितु आदिवासी अस्मिता और सांस्कृतिक संरक्षण से भी गहराई से जुड़े हुए हैं। राजनीतिक प्रतिनिधित्व इन संघर्षों को और बढ़ाता है। मीतेई–प्रभुत्व वाली राजनीतिक व्यवस्था प्रायरू पहाड़ी जनजातियों को हाशिए पर डाल देती है, जिसके कारण नागा औव र कुकी जैसे समूहों द्वारा अधिक राजनीतिक स्वायत्तता तथा प्रतिनिधित्व की माँग की जातो है (थौदम, 2021)। प्रस्तावित कुकी स्वायत्त जिला परिषद जैसी भिन्न प्रशासनिक इकाइयों की मांग स्थानीय शासन और संसाधनों पर अधिक नियंत्रण की इच्छा को दर्शाती है (रॉय, 2020)। केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा इन मांगों को प्रभावी ढंग से संबोधित करने में असमर्थता के कारण छिटपुट हिंसा व अशांति हुई है।

मीतेई और पहाड़ी जनजातियों के मध्य सांस्कृतिक मतभेद भी इन संघर्षों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मीतेई, अपनी मुख्य रूप से हिंदू संस्कृति के साथ, और कुकी और नागा, अपने ईसाई धर्म और पारंपरिक प्रथाओं के साथ, सांस्कृतिक और धार्मिक तनाव का अनुभव करते हैं जो सामाजिक संघर्ष में योगदान देते हैं (चक्रवर्ती, 2021)। यह सांस्कृतिक विभाजन प्रायरू पारंपरिक प्रथाओं, धार्मिक स्वतंत्रता व सामाजिक मानदंडों पर विवादों में परिलक्षित होता है। उदाहरण के लिए, पारंपरिक त्योहारों और प्रथाओं का उत्सव कभी–कभी विभिन्न समुदायों की सांस्कृतिक प्रथाओं के आपस में मिलने पर टकराव का कारण बनता है (मीतेई, 2022)। ये सांस्कृतिक संघर्ष न केवल अस्मिता का विषय हैं, अपितु आदिवासी समूहों के मध्य गर्व और प्रतिरोध का स्रोत भी हैं।

इन संघर्षों का प्रभाव गहन व बहुआयामी है। जनजातीय संघर्षों से प्रभावित क्षेत्रों में विस्थापन, हिंसा और आवाजाही पर प्रतिबंध सहित मानवाधिकार उल्लंघन सामान्य बात हो गई है (सिंह, 2019)। हिंसा के निरंतर होने से दैनिक जीवन बाधित होता है तथा सामाजिक स्थिरता कमजोर होती है, जिससे क्षेत्र में आर्थिक व मानवीय संकट बढ़ जाते हैं। इसके अतिरिक्त, निरंतर संघर्ष निवेश को रोककर व बुनियादी ढाँचा परियोजनाओं को बाधित करके आर्थिक विकास को बाधित करता है (सरमा, 2021)। आर्थिक अस्थिरता निर्धनता व अविकसितता को आर बढ़ाती है, जिससे संघर्ष व अभाव का चक्र बनता है।

सांस्कृतिक संरक्षण एक और महत्वपूर्ण चिंता का विषय है। चल रहे संघर्ष जनजातीय समूहों की अनूठी सांस्कृतिक अस्मिता व परंपराओं के लिए एक महत्वपूर्ण संकत उत्पन्न करते हैं। प्रभुत्व के लिए संघर्ष प्रायः पारंपरिक प्रथाओं और सांप्रदायिक संबंधों के क्षरण की ओर ले जाता है (चक्रवर्ती,

2021)। संघर्ष के मध्य सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने के प्रयास चुनौतीपूर्ण हैं, क्योंकि संसाधन और ध्यान तत्काल सुरक्षा और राजनीतिक चिंताओं को दूर करने की ओर मोड़ दिए जाते हैं (भट्टाचार्य, 2019)।

इन संघर्षों को संबोधित करने के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है जिसमें संवाद, नीति सुधार व सांस्कृतिक संवर्धन सम्मिलित हो। परस्पर विरोधी पक्षों के मध्य खुले और समावेशी संवाद की शुरुआत करना विश्वास बनाने और पारस्परिक रूप से स्वीकार्य समाधान तक पहुँचने के लिए आवश्यक है (रॉय, 2020)। शांति वार्ता व विमर्श के लिए प्लेटफॉर्म स्थापित करने से शिकायतों को दूर करने तथा सहयोग को सुविधाजनक बनाने में मदद मिल सकती है। इसके अतिरिक्त, सभी आदिवासी समुदायों के अधिकारों को मान्यता देने और उनका सम्मान करने वाली नीतियों को लागू करना भूमि और संसाधनों पर विवादों को समाधान करने के लिए महत्वपूर्ण है (कुमार, 2022)। निष्पक्षता सुनिश्चित करने व तनाव कम करने के लिए ऐसी नीतियों को सभी हितधारकों के विचारों के साथ विकसित किया जाना चाहिए।

समुदायों के मध्य की खाई को पाटने के लिए सांस्कृतिक जागरूकता व शिक्षा को बढ़ावा देना भी महत्वपूर्ण है। अंतर–सांस्कृतिक आदान–प्रदान और शैक्षिक कार्यक्रम आपसी सम्मान और समझ को बढ़ावा दे सकते हैं, जिससे सांस्कृतिक तनाव कम करने में मदद मिलती है (मेइतेई, 2022)। स्थानीय शासन संस्थानों को अधिक समावेशी और सभी समुदायों का प्रतिनिधित्व करने के लिए मजबूत करना भी राजनीतिक प्रतिनिधित्व व स्वायत्तता के विषयों का समाधान करने में सहायता कर सकता है। यह सुनिश्चित करना कि निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में सभी समूहों की आवाज हो, समानता को बढ़ावा दे सकता है तथा संघर्षों को कम कर सकता है (थौदम, 2021)।

निष्कर्षतः, मणिपुर में जनजातीय अस्मिता व सांस्कृतिक संघर्ष राजनीतिक और सामाजिक रूप से जटिल वातावरण में विविधता को प्रबंधित करने और सामाजिक सद्भाव सुनिश्चित करने की व्यापक चुनौतियों को दर्शाते हैं। इन मुद्दों को संबोधित करने के लिए विभिन्न समुदायों की अनूठी जरूरतों और आकांक्षाओं को समझने, संवाद को बढ़ावा देने और समानता और समावेश को बढ़ावा देने वाली नीतियों को लागू करने के लिए एक ठोस प्रयास की आवश्यकता है। अपनी विविध जनजातियों की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को अपनाकर व स्थायी समाधानों की दिशा में काम करके, मणिपुर एक अधिक सामंजस्यपूर्ण तथा समृद्ध भविष्य की ओर बढ़ सकता है।

संदर्भ सूचीः

- Bhattacharya, S. (2019). *Land Disputes and Resource Management in Manipur*. Northeastern Review, 12(3), 45-59.
- Chakraborty, S. (2021). *Cultural Conflicts and Identity Politics in Manipur*. Journal of South Asian Studies, 24(2), 88-102.
- Kumar, A. (2022). *Autonomy Demands and Political Representation in Manipur*. Asian Affairs, 29(4), 67-82.
- Meitei, R. (2022). *Cultural Preservation Amidst Conflict in Manipur*. Cultural Dynamics Journal, 15(1), 33-47.
- Roy, P. (2020). *Peace Processes and Conflict Resolution in Manipur*. Indian Journal of Political Science, 41(1), 25-38.
- Sarma, M. (2021). *Economic Impact of Tribal Conflicts in Manipur*. Economic and Political Weekly, 56(20), 22-29.
- Singh, J. (2019). *Human Rights and Conflict in Manipur*. Human Rights Quarterly, 41(3), 112-128.
- Singh, N. (2020). *The Political Landscape of Manipur: A Historical Overview*. South Asian History and Culture, 11(2), 51-65.
- Thoudam, N. (2021). *Governance and Representation Issues in Manipur*. Journal of Northeast Indian Studies, 18(1), 77-91.

♦♦♦♦♦

4

संविधान की छटी अनुसूची व समावेशिताः उत्तर–पूर्वी राज्यों के विशेष संदर्भ में

नरेंद्र कुमार

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय संविधान की छटी अनुसूची के तहत उत्तर पूर्वी क्षेत्र के चार राज्य (असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम की 'स्वायत्त जिला परिषद') सम्मिलित है। अनुच्छेद 244 (2) के उप खण्ड के अंतर्गत यह स्पष्ट है कि छटी अनुसूची के प्रावधान इसके अंतर्गत आने वाले उत्तर पूर्वी राज्यों (आसाम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम) की जनजाति क्षेत्र के प्रशासन से संबन्धित होंगे, (भारत का संविधान, 2011) इन स्वायत्त जिला परिषद का निर्माण आदिवासी अधिकारों और उनकी संस्कृति की सुरक्षा करने के लिए किया गया है। इस अनुसूची की स्थापना के पीछे तर्क यह है कि 'भूमि के साथ संबंध इनकी जनजातीय पहचान का आधार है। भूमि और प्राकृतिक संसाधनों पर स्थानीय जनजातीय लोगों का नियंत्रण सुनिश्चित कर उनकी संस्कृति तथा पहचान को संरक्षित किया जा सकता है, क्योंकि ये कारक काफी हद तक जनजातीय लोगों की जीवन–शैली एवं संस्कृति को निर्धारित करते है। तथापि इस प्रकार की व्यवस्था के परिणामस्वरूप विभिन्न समूहों के मध्य संघर्ष उत्पन्न हुआ है, उदाहरण के लिए आदिवासी और गैर–आदिवासी समुदायों के मध्य संघर्ष। इसके अतिरिक्त, यह राज्य और क्षेत्र के सामाजिक सद्भाव, स्थिरता तथा आर्थिक विकास को कमजोर करता है। छटी अनुसूची के कुछ महत्वपूर्ण प्रावधान इस प्रकार है।

छटी अनुसूची के मुख्य प्रावधान और इसकी अनिवार्यता

संविधान सभा द्वारा पारित छठी अनुसूची, स्वायत्त क्षेत्रीय परिषद और स्वायत्त जिला परिषदों के माध्यम से आदिवासियों के अधिकारों की रक्षा का प्रावधान करती है। भारतीय संविधान की छठी अनुसूची मे मेघालय सहित असम, मिजोरम और त्रिपुरा में एक अनूठी प्रशासनिक संरचना ह। यह इन क्षेत्रों के प्रशासन के लिए स्वायत्त जिला परिषदों और क्षेत्रीय परिषदों को अपने क्षेत्राधिकार के अंतर्गत क्षेत्रों के संबंध में कानून बनाने का अधिकार प्रदान करती है। छटी अनुसूची मे उपरोक्त

राज्यों के लिए विभिन्न महत्वपूर्ण प्रावधान है जैसे– (1) आदिवासियों की भूमि गैर–आदिवासियों को हस्तरंतरण नहीं की जाएगी (2) राज्यपाल को स्वायत्त जिलों को गठित करने और पुनर्गठित करने का अधिकार है। यदि एक स्वायत्त जिले में भिन्न–भिन्न जनजातिययां है, तो राज्यपाल जिले को कई स्वायत्त क्षेत्रों में विभाजित कर सकता है। (3) छटी अनुसूची के अंतर्गत स्वायत्त जिला परिषद, केंद्रीय राज्य संरचना के आधार पर प्रशासनिक आवश्यकताओं को निर्देशित करने में एक बड़ी भूमिका निभाता है। (4) इन परिषदों को अपने अधिकार क्षेत्र के अंतगत आने वाले क्षेत्रों के संबंध में कानून बनाने का अधिकार है, जिनमें भूमि, जंगल, खेती, विरासत, आदिवासियों के स्वदेशी रीति–रिवाजों और परंपराओं आदि से संबंधित कानून सम्मिलित हैं, साथ ही इन्हें भूमि राजस्व तथा कुछ अन्य करों को इकट्ठा करने का भी अधिकार प्राप्त है।

छटी अनुसूची क्षेत्र की जनजाति अन्य राज्यों के अंतर्गत आने वाले जनजातियों से अधिक प्रगतिशील हैं। संविधान में इन्हें 'स्वायत्त जिला परिषद' और 'स्वायत्त क्षेत्रीय परिषद' के रूप में प्रर्याप्त अधिकार दिए गए हैं। मुख्यत छटी अनुसूची के कई महत्वपूर्ण लाभ है जिसमे कुछ महत्वपूर्ण इस प्रकार है। (1) छठी अनुसूची उस क्षेत्र की भूमि पर मूल निवासियों के विशेषाधिकार की रक्षा करती है। (2) छठी अनुसूची आदिवासी समुदायों को काफी स्वायत्तता प्रदान करती है। (3) इस अनुसूची के अंतर्गत जिला परिषद और क्षेत्रीय परिषद को कानून बनाने की वास्तविक शक्ति प्राप्त है। ये निकाय क्षेत्र में विकास, स्वास्थ्य देखभाल, शिक्षा, सड़कों और नियामक शक्तियों के लिए योजनाओं की लागत को पूरा करने के लिए भारत की संचित निधि से धन को मंजूरी प्रदान कर सकते हैं। (4) इस अनुसूची के अंतर्गत राज्यपाल 'जिला परिषद' और क्षेत्रीय परिषद के संदर्भ में परिषद अथवा आदिवासी संगठन के साथ विचार विमर्श कर कानून बना सकता हैं। इस अनुसूची के अंतर्गत कई स्थानीय विषय आते हैं जैसे गांव और कस्बे के लिए प्रशासनिक नीति बनाना।

इस अनुसूची मे स्पष्ट बताया गया है कि राज्य कार्यपालिका के प्राधिकार के साथ छटी अनुसूची के जनजाति क्षेत्र स्वायत्त जिले के रूप में शासित किए जाएंगे। छटी अनुसूची के भाग 3 के अनुसार स्थानीय स्तर पर कुछ न्यायिक और विधायी शक्तियां स्वायत्त परिषदों को प्रदान हैं। जैसे आरक्षित क्षेत्र से भिन्न वनों का प्रबंध, विवाह और सामाजिक रीतिरिवाज इत्यादि। परंतु इन परिषदों द्वारा बनाई गए कानून तब तक निष्प्रभावी रहंगे जब तक राज्यपाल उसे अनुमति प्रदान न करे। परंतु कुछ विचारकों का मानना है कि इस प्रकार के विशेष अधिकारों के द्वारा अन्य व्यक्तियों और समूह के साथ भेदभाव किया जा रहा है। जिसका वर्णन लेख के अग्रिम भाग मे किया गया है।

छटी अनुसूची के विपक्ष मे कुछ महत्वपूर्ण तर्क

कुछ विद्वानों का कहना है कि छठी अनुसूची गैर–आदिवासी निवासियों के विरुद्ध विभिन्न माध्यमों से भेदभाव करती है और उनके मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करती है। जैसे विधि के समक्ष समता का अधिकार (अनुच्छेद 14), भेदभाव के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 15) और भारत में कहीं भी बसने का अधिकार (अनुच्छेद 19) इत्यादि। यह बात सिद्ध तथ्य है कि सीमांत वर्गों के लिए वास्तव में विशेष संवैधानिक सुरक्षा की आवश्यकता होती है जिससे कि यह सुनिश्चित किया जा सके कि उनके साथ की गई ऐतिहासिक गलतियां नहीं दोहराई जाएं, किंतु इसने गैर–आदिवासियों को न्याय से वंचित कर दिया है, जो पीढ़ियों से मेघालय में रहते आए हैं और अब हाशिए पर चले गए हैं। विद्वानों का कहना है कि छठी अनुसूची को अल्पसंख्यक आदिवासियों के अधिकारों की रक्षा के लिए शामिल किया गया था। किंतु मेघालय जैसे राज्यों में आदिवासी बहुल रूप में है। यहां 90 प्रतिशत विधानसभा सीटें (मेघालय में 60 में से 55 प्रतिशत) आदिवासियों के लिए आरक्षित हैं। मेघालय मे कई गैर–आदिवासियों को बाहर कर दिया है। इसलिए वास्तव में अब अल्पसंख्यक गैर–आदिवासियों के अधिकार को सुरक्षा की आवश्यकता है। अतरू नीति निर्माताओं को भारतीय संविधान की छठी अनुसूची के तहत प्राप्त शक्तियों को फिर से मूल्यांकित करने पर विचार करना चाहिए।

निष्कर्ष

जनजातीय समूह जैसे समाज के सीमांत वर्गों के लिये विशेष संवैधानिक सुरक्षा बहुत ही आवश्यक है जिससे कि उनके साथ हुए ऐतिहासिक अन्याय की भरपाई सुनिश्चित की जा सके और उनके साथ इस प्रकार के अन्याय को रोका जा सके। परंतु इसने उन गैर–आदिवासी परिवारों को न्याय पाने से वंचित कर दिया है, जो स्वायत्त जिला परिषद प्रशासित क्षेत्रों में पीढ़ियों से रह रहे हैं और इस भेदभाव के परिणामस्वरूप बिल्कुल हाशिये पर पहुँच गए हैं। ऐसे में सरकार को इस संवेदनशील विषय से निपटने के लिए इन क्षेत्रों में रह रहे आदिवासियों और गैर–आदिवासियों का विश्वास जीतना होगा तथा उनमें सुरक्षा एवं विश्वास की भावना स्थापित करनी होगी जिससे कि यहां आदिवासी और गई–आदिवासियों के अधिकारों के मध्य समन्वय स्थापित किया जा सके।

संदर्भ सूचीः

- 'भारत का संविधान' (द्विभाषीय संस्करण) (2011) इलाहबाद सैंटर लॉ पब्लिकेशन.
- बसु. दुर्गा .दास (2013) 'भारत का संविधानः एक परिचय' (10 वां संस्करण) हरियाणा लेग्जिस नेक्सिस पब्लिकेशन.
- https://www-mea-gov-in/Images/pdf1/S6-pdf]8/10/2019

♦♦♦♦♦

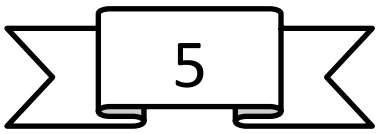

पूर्वोत्तर भारत में जनजातीय समुदायः आरक्षण, प्रवासन और अतिक्रमण की चुनौतियां

अमित प्रताप जटिया

वरिष्ठ अध्येता, समाज विज्ञान संकाय, दयालबाग शिक्षण संस्थान, आगरा

पूर्वोत्तर भारत, जिसमें अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, सिक्किम और त्रिपुरा राज्य शामिल हैं, एक ऐसा क्षेत्र है जो अपनी जातीय और सांस्कृतिक विविधता के लिए जाना जाता है। यह कई मूलनिवासी जनजातियों और संजातीय समूहों का घर है, जिनमें से प्रत्येक की अपनी अलग भाषा, रीति–रिवाज, परंपराएं और जीवन शैली है। इस क्षेत्र में आदिवासी समुदायों का प्रकृति के साथ सद्भाव से रहने और अपनी सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने का एक लंबा इतिहास है। इस क्षेत्र में 200 से अधिक विशिष्ट आदिवासी समुदाय हैं, जिनमें से प्रत्येक की अपनी सांस्कृतिक प्रथाएं, भाषाएं और सामाजिक–आर्थिक संरचनाएं हैं। प्रमुख जनजातियों में बोडो, खासी, नागा, मिजो, मेइतेई, गारो, त्रिपुरी और कई अन्य शामिल हैं। इन जनजातियों का इस क्षेत्र में निवास करने का एक लंबा इतिहास है, जिनमें से कुछ की जड़ें कई सदियों पुरानी हैं। यह लेख पूर्वोत्तर भारत में इन मूलनिवासी समुदायों से संबंधित आरक्षण, आंदोलन और अतिक्रमण की जटिल गतिशीलता की पड़ताल करता है। यह अध्ययन जनजातियों और जातीय समूहों के सामने आने वाली चुनौतियों, पहचान और भूमि अधिकारों के लिए उनके संघर्ष और उनकी अद्वितीय सांस्कृतिक विरासत के सतत विकास और संरक्षण की आवश्यकता पर प्रकाश डालता है।

औपनिवेशिक युग और जनजातीय समुदायों पर इसका प्रभाव

भारत में औपनिवेशिक युग का पूर्वोत्तर भारत के जनजातीय समुदायों पर गहरा प्रभाव पड़ा। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन से इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तनों की शुरुआत हुई। ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन ने नए कानून, प्रशासनिक प्रणालियाँ और आर्थिक नीतियां पेश कीं, जिन्होंने

आदिवासी समुदायों की पारंपरिक सामाजिक और राजनीतिक संरचनाओं को बाधित कर दिया। अंग्रेजों ने बाहरी लोगों के प्रवेश को विनियमित करने के लिए कुछ क्षेत्रों में इनर लाइन परमिट (आईएलपी) की अवधारणा को लागू किया, जिसने अनजाने में जनजातियों के आंदोलन और प्रवासन पैटर्न को प्रभावित किया। इसके अतिरिक्त, नकदी फसलों की शुरूआत और चाय बागानों के विस्तार से भूमि उपयोग में बदलाव आया और स्थानीय आबादी का विस्थापन हुआ। औपनिवेशिक प्रशासन ने अक्सर जनजातियों और जातीय समूहों के प्रथागत कानूनों और पारम्परिक रिवाजों की उपेक्षा करते हुए शासन, कराधान और कानूनी प्रणालियों के नए रूप भी लागू किए।

स्वतंत्रता के बाद की नीतियां एंव आरक्षण

1947 में भारत को स्वतंत्रता मिलने के बाद, सरकार ने आदिवासी समुदायों द्वारा सामना किए गए ऐतिहासिक अन्याय को संबोधित करने की आवश्यकता को पहचाना। भारत के संविधान ने अनुच्छेद 342 के तहत अनुसूचित जनजातियों (एसटी) की सुरक्षा और कल्याण के लिए विशेष प्रावधान प्रदान किए। इसने उनकी विशिष्ट सांस्कृतिक और सामाजिक–आर्थिक विशेषताओं को मान्यता दी और उनके अधिकारों की रक्षा करने और उनके विकास को बढ़ावा देने को लक्ष्य बनाया। जनजातीय समुदायों के ऐतिहासिक रूप से हाशिए पर रहने की स्थिति को संबोधित करने के लिए, सरकार ने विभिन्न नीतियां और कानून पेश किए। अनुसूचित जनजाति और अन्य पारंपरिक वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006, जिसे आमतौर पर वन अधिकार अधिनियम (एफआरए) के रूप में जाना जाता है, का उद्देश्य वन–निवास आदिवासी समुदायों के उनकी पैतृक भूमि और वन संसाधनों पर उनके अधिकारों को मान्यता देना और उनकी रक्षा करना है। सरकार ने शैक्षणिक संस्थानों, सरकारी नौकरियों और विधायी निकायों में एसटी के लिए कोटा प्रदान करते हुए आरक्षण नीतियां भी लागू कीं। इन नीतियों का उद्दश्य आदिवासी समुदायों को ऐतिहासिक नुकसानों से उबरने और देश के सामाजिक–आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में भाग लेने के अवसर प्रदान करना था।

आलोचनाएँ और चुनौतियाँ

आरक्षण नीतियों ने जनजातीय समुदायों के ऐतिहासिक हाशिए पर रहने को संबोधित करने में महत्वपूर्ण प्रगति की है, लेकिन इसके साथ ही उन्हें आलोचनाओं और चुनौतियों का भी सामना करना पड़ा है। कुछ सामान्य आलोचनाओं इस प्रकार हैं– अपर्याप्त कार्यान्वयनरू आरक्षण नीतियों

को अक्सर उनके प्रभावी कार्यान्वयन में चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। प्रशासनिक अक्षमताएं, भ्रष्टाचार और निगरानी तंत्र की कमी जैसे मुद्दे पात्र आदिवासी उम्मीदवारों द्वारा आरक्षण लाभों के उचित उपयोग में बाधा बन जाते हैं। गैर–आरक्षित श्रेणियों के लोगों से विरोधः आरक्षण नीतियों को कभी–कभी गैर–आरक्षित श्रेणियों के लोगों से विरोध और प्रतिक्रिया का सामना करना पड़ा है। आलोचकों का तर्क है कि आरक्षण नीतियां विपरीत भेदभाव पैदा करती हैं और योग्यता–आधारित चयन प्रक्रियाओं में बाधा डालती हैं। इससे समाज के विभिन्न वगों के बीच बहस और तनाव पैदा हो गया है। अंतर–सामुदायिक असमानताएँः हालाँकि आरक्षण नीतियों का उद्देश्य सभी एसटी का उत्थान करना है, लेकिन यह जनजातीय समुदायों के भीतर आंतरिक असमानताओं को प्रभावी ढंग से संबोधित नहीं कर सकीं है। एसटी के अंतर्गत आने वाली कुछ समुदाय अन्य समुदायों की अपेक्षा अधिक वंचित हैं जिस वजह से इन आरक्षण नीतियों का लाभ विभिन्न समुदायों में असमान रूप से प्राप्त हुआ है। आरक्षण का सीमित दायरारू आरक्षण नीतियां मुख्य रूप से शैक्षणिक संस्थानों और सरकारी नौकरियों तक सीमित हैं। निजी क्षेत्र में आरक्षण की कमी, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुंच और अन्य क्षेत्रों में अवसरों की कमी आरक्षण नीतियों के समग्र प्रभाव को अत्यंत सीमित कर देतीं है। सांस्कृतिक पहचान और समावेशनः सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित करने और सामाजिक–आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के बीच संतुलन बनाने में आरक्षण नीतियों को चुनौतियों का सामना करना पडा है। तेजी से आधुनिकीकरण और मुख्यधारा के समाज में आत्मसात होना कभी–कभी पारंपरिक सांस्कृतिक प्रथाओं और मूल्यों के कमजोर या नष्ट होने की बजह बन जातें है।

पूर्वोत्तर जनजातियों का प्रवासन

पूर्वोत्तर भारत में आंतरिक प्रवासन एक महत्वपूर्ण घटना है जिसमें पूर्वोत्तर क्षेत्र के भीतर ही एक राज्य या क्षेत्र से दूसरे राज्य में लोगों का आना–जाना शामिल होता है। आंतरिक प्रवास में योगदान देने वाले कई कारक हैं, जैसे बेहतर आर्थिक अवसरों की तलाश, शिक्षा, विवाह और सांस्कृतिक आदान–प्रदान। पूर्वोत्तर भारत में प्रवासन विभिन्न कारकों द्वारा प्रेरित होता है। इन कारकों में सम्मिलित हैं– सीमित रोजगार के अवसर, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं की कमी, राजनीतिक अशांति और प्राकृतिक आपदाएँ।

पिछले कुछ वर्षों में पूर्वोत्तर भारत से देश के अन्य हिस्सों में आदिवासी समुदायों का प्रवास देखा गया है। प्रवास के प्रमुख स्थलों में दिल्ली, मुंबई, कोलकाता और बैंगलोर जैसे महानगरीय शहर शामिल हैं। भारत के अन्य हिस्सों में प्रवास के कारण आंतरिक प्रवास के समान हैं, जैसे आर्थिक

अवसर, शिक्षा और रोजगार की संभावनाएँ। भारत के अन्य हिस्सों में प्रवास अक्सर जनजातियों को विभिन्न संस्कृतियों, विचारों और जीवन शैली से परिचित कराता है। हालाँकि, यह चुनौतियाँ भी पेश करता है क्योंकि उन्हें सांस्कृतिक और सामाजिक समायोजन, भेदभाव और अपनी विशिष्ट पहचान और परंपराओं को संरक्षित करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

पूर्वोत्तर भारत में प्रवासन को कई कारक प्रभावित करते हैं, जिनमें शामिल हैं– आर्थिक कारकरू सीमित आर्थिक अवसर, उद्योगों की कमी और कम कृषि उत्पादकता लोगों को बेहतर नौकरी की संभावनाओं और आजीविका की तलाश में पलायन करने के लिए प्रेरित करती है। शैक्षिक कारकरू अपर्याप्त शैक्षिक सुविधाएं, विशेष रूप से दूरदराज के क्षेत्रों में, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और उच्च शैक्षणिक अवसरों तक पहुंच के लिए प्रवासन को बढ़ावा देती हैं। बुनियादी ढांचे का विकासरू प्रवासन अक्सर कुछ क्षेत्रों में परिवहन, स्वास्थ्य देखभाल और संचार सुविधाओं सहित बेहतर बुनियादी ढांचे की उपलब्धता से प्रभावित होता है। संघर्ष और राजनीतिक अशांतिरू राजनीतिक अस्थिरता, विद्रोह और अंतर–जातीय संघर्ष जैसे कारक भी लोगों को सुरक्षा की तलाश में पलायन करने के लिए मजबूर करते हैं। प्राकृतिक आपदाएँ और पर्यावरणीय कारकरू पूर्वोत्तर भारत बाढ़, भूस्खलन और भूकंप जैसी प्राकृतिक आपदाओं से ग्रस्त रहता है। ये आपदाएँ समुदायों को विस्थापित होने के लिए मजबूर करती हैं जिसके परिणामस्वरूप सुरक्षित क्षेत्रों की ओर पलायन होता है।

भूमि के अतिक्रमण का मुद्दा

पूर्वोत्तर भारत में मूलनिवासी समुदायों की पहचान, सामाजिक–सांस्कृतिक प्रथाओं और आर्थिक कल्याण के लिए भूमि अधिकार महत्वपूर्ण हैं। हालाँकि, स्थानीय जनजातियों को अक्सर अपने भूमि अधिकारों पर जोर देने और उनकी रक्षा करने में चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। ऐतिहासिक अन्याय, अपर्याप्त कानूनी मान्यता और अस्पष्ट भूमि स्वामित्व प्रणालियों के परिणामस्वरूप आदिवासी भूमि पर विवाद और अतिक्रमण हुआ है। भारत का संविधान मूलनिवासी समुदायों के अधिकारों को मान्यता देता है लेकिन भूमि अधिकार कानूनों का कार्यान्वयन विभिन्न राज्यों में भिन्न–भिन्न है। कुछ राज्यों ने आदिवासी भूमि की रक्षा के लिए कानून लागू किए हैं, जैसे पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार) अधिनियम (पीईएसए), जो आदिवासी समुदायों को स्थानीय स्वशासन और भूमि अधिकार प्रदान करता है। हालांकि, व्यवहार में, जटिल कानूनी प्रक्रियाओं, जागरूकता की कमी और अतिक्रमण के मुद्दों के कारण भूमि अधिकारों की पूर्ण उपयोग एक चुनौती बनी हुई है।

पूर्वोत्तर भारत में मूलनिवासी समुदायों के सामने आने वाली प्रमुख भूमि संबंधी चुनौतियों में से एक गैर–आदिवासी आबादी द्वारा उनकी भूमि पर अतिक्रमण है। जनसंख्या दबाव, प्रवासन, शहरीकरण और विकासात्मक गतिविधियों जैसे कारकों के परिणामस्वरूप अक्सर कृषि, बुनियादी ढांचे के विकास और वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए आदिवासी भूमि का अतिक्रमण होता है। गैर–मूलनिवासी आबादी द्वारा अतिक्रमण से भूमि स्वामित्व, विस्थापन और आदिवासी समुदायों के लिए पारंपरिक आजीविका का नुकसान होता है। यह उनकी सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक–आर्थिक कल्याण के लिए भी खतरा बनता है। कानूनी तंत्र, भूमि सर्वेक्षण और बेदखली अभियान के माध्यम से इन अतिक्रमण मुद्दों को हल करने का प्रयास किया गया है। हालाँकि, आदिवासी भूमि को पुनः प्राप्त करने और विवादों को हल करने की प्रक्रिया लंबी, जटिल और कानूनी और नौकरशाही चुनौतियों के अधीन होती है।

जलविद्युत परियोजनाओं जैसे संसाधन निष्कर्षण का पूर्वोत्तर भारत में आदिवासी भूमि पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। ये परियोजनाएँ अक्सर आदिवासी क्षेत्रों में या उसके आसपास होती हैं, जिससे मूलनिवासी समुदायों का विस्थापन, आजीविका की हानि और पर्यावरणीय गिरावट होती है। संसाधन निष्कर्षण जनजातीय भूमि के नाजुक पारिस्थितिक संतुलन को बाधित कर सकता है, जिससे उनकी पारंपरिक प्रथाओं, प्राकृतिक संसाधनों तक पहुंच और सांस्कृतिक विरासत प्रभावित होती है। यह लाभों के समान वितरण और संसाधन निष्कर्षण के संबंध में निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में आदिवासी समुदायों की भागीदारी के बारे में भी चिंता पैदा करता है।

जनजातीय क्षेत्रों में भूमि अतिक्रमण और संसाधनों के दोहन के गंभीर पर्यावरणीय परिणाम होते हैं। वन, नदियाँ और अन्य प्राकृतिक संसाधन जो आदिवासी समुदायों के अस्तित्व और भरण–पोषण के लिए महत्वपूर्ण हैं, गिरावट और कमी का सामना कर रहे हैं। वनों की हानि न केवल जैव विविधता और पारिस्थितिक स्थिरता को प्रभावित करती है, बल्कि मूलनिवासी समुदायों के पारंपरिक ज्ञान, प्रथाओं और आध्यात्मिक मान्यताओं को भी प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त, पर्यावरणीय क्षरण से जल स्रोतों, मिट्टी की गुणवत्ता और समग्र पारिस्थितिकी तंत्र स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, जिससे आदिवासी समुदायों के सामने आने वाली चुनौतियाँ और बढ़ती हैं। भूमि अतिक्रमण और पर्यावरण संबंधी चिंताओं को संबोधित करने के लिए एक बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है जिसमें कानूनी ढांचे को मजबूत करना, भूमि अधिकारों का प्रभावी कार्यान्वयन सुनिश्चित करना, स्थायी संसाधन प्रबंधन को बढ़ावा देना, निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में मूलनिवासी समुदायों को

शामिल करना और पर्यावरण संरक्षण और सांस्कृतिक महत्व के बारे में जागरूकता को बढ़ावा देना शामिल है।

मूलनिवासी पहचान और सांस्कृतिक संरक्षण

पूर्वोत्तर भारत में मूलनिवासी पहचान को कई खतरों का सामना करना पड़ता है जो इसके संरक्षण और निरंतरता को चुनौती देते हैं। वैश्वीकरण, शहरीकरण, प्रवासन, अतिक्रमण और आधुनिकीकरण जैसे कारकों के परिणामस्वरूप अक्सर पारंपरिक प्रथाओं का क्षरण, भाषा की हानि और सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास होता है। पारंपरिक भूमि से विस्थापन और मुख्यधारा के समाज में आत्मसात होने से मूलनिवासी पहचान पर भी असर पड़ता है।

पूर्वोत्तर भारत में मूलनिवासी समुदायों की सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित और पुनर्जीवित करने के प्रयास किए जा रहे हैं। विभिन्न पहल सांस्कृतिक संरक्षण पर ध्यान केंद्रित करती हैं, जिसमें पारंपरिक ज्ञान का दस्तावेजीकरण, भाषा पुनरुद्धार कार्यक्रम, पारंपरिक कला रूपों, संगीत और नृत्य को बढ़ावा देना और सांस्कृतिक केंद्रों और संग्रहालयों की स्थापना करना शामिल है। समुदाय के नेतृत्व वाली पहल सांस्कृतिक पुनरुत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जनजातियाँ और जातीय समूह अपनी विरासत का जश्न मनाने और युवा पीढ़ियों तक सांस्कृतिक ज्ञान पहुँचाने के लिए त्योहारों, सांस्कृतिक कार्यक्रमों और सामुदायिक समारोहों का आयोजन करते हैं। ये प्रयास पहचान की भावना बनाए रखने, गौरव को बढ़ावा देने और सांस्कृतिक प्रथाओं की निरंतरता सुनिश्चित करने में मदद करते हैं।

शिक्षा और जागरूकता मूलनिवासी पहचान और सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा प्रणालियों को मूलनिवासी ज्ञान, भाषाओं और इतिहास को पाठ्यक्रम में शामिल करने की आवश्यकता है, यह सुनिश्चित करते हुए कि युवा पीढ़ी अपनी सांस्कृतिक विरासत से अवगत हो। मुख्यधारा की भाषाओं के साथ–साथ मूलनिवासी भाषाओं के उपयोग को बढ़ावा देने के लिए द्विभाषी शिक्षा कार्यक्रम लागू किए जा सकते हैं। इसके अलावा, व्यापक आबादी के बीच सांस्कृतिक विविधता के मूल्य और महत्व के बारे में जागरूकता बढ़ाना आवश्यक है। इसे सांस्कृतिक आदान–प्रदान कार्यक्रमों, अंतरसांस्कृतिक संवादों और मूलनिवासी संस्कृतियों की विशिष्टता का सम्मान और सराहना करने वाली समावेशी प्रथाओं को बढ़ावा देने के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। मूलनिवासी पहचान और सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित आर पुनर्जीवित

करने के प्रयासों के लिए समुदायों, सरकारी निकायों, नागरिक समाज संगठनों और शैक्षणिक संस्थानों के बीच सहयोग की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

संक्षेप में, जनजातीय विविधता के संरक्षण के लिए ठोस प्रयासों, नीतिगत हस्तक्षेप और विभिन्न हितधारकों के बीच सहयोग की आवश्यकता है। जनजातियों और संजातीय समूहों के अधिकारों और अद्वितीय योगदान को मान्यता और सम्मान देकर, पूर्वोत्तर भारत एक ऐसे भविष्य का निर्माण कर सकता है जो अपनी सांस्कृतिक विरासत का जश्न मनाएगा, अपने मूलनिवासी समुदायों की भलाई सुनिश्चित करेगा और एक सामंजस्यपूर्ण और समावेशी समाज का मार्ग प्रशस्त करेगा। पूर्वोत्तर भारत में जनजातियों और जातीय समूहों के लिए भविष्य की संभावनाएं उनके सामने आने वाली चुनौतियों का समाधान करने की प्रतिबद्धता पर निर्भर करती हैं। आरक्षण नीतियों को मजबूत करना, भूमि अधिकारों की रक्षा करना, सांस्कृतिक संरक्षण को बढ़ावा देना और समावेशी और सतत विकास रणनीतियों को अपनाना आवश्यक है। निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में जनजातीय समुदायों से निरंतर बातचीत, सहयोग और भागीदारी उनके सशक्तिकरण और आत्मनिर्णय में योगदान देगी। इसके अलावा, सामाजिक–आर्थिक असमानताओं को दूर करना, बुनियादी ढांचे में निवेश करना, आदिवासी क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और आजीविका के अवसर प्रदान करना उनके समग्र विकास के लिए महत्वपूर्ण है। आदिवासी समुदायों के बीच गौरव और पहचान की भावना को बढ़ावा देते हुए पारंपरिक ज्ञान, भाषाओं और सांस्कृतिक प्रथाओं को संरक्षित करने के प्रयास किए जाने चाहिए।

♦♦♦♦♦

Aiming High, Touching Sky

सी जी एस

वैश्विक अध्ययन केंद्र

(पूर्वकालिक विकासशील राज्य शोध केंद्र)

अकादमिक अनुसंधान केंद्र भवन

गुरु तेग बहादुर मार्ग

दिल्ली विश्वविद्यालय

दिल्ली– 110007